International Journal of Hindi Research
www.hindijournal.com
ISSN: 2455-2232
Received: 20-02-2021, Accepted: 03-03-2021, Published: 15-03-2021
Volume 7, Issue 2, 2021, Page No. 97-101

अब्दुल बिस्मिल्लाह के 'जहरबाद' में व्यवस्था और पुरुष सत्ता का शोषण

डॉ. मिनी जोर्ज
असोसियेट प्रोफसर, विभागाध्यक्षा और शोध निर्देशक हिन्दी स्नातकोत्तर एवं शोध विभाग कैथोलिक्केट कॉलेज पत्तनमतिट्टा, केरल, भारत

सारांश
'जहरवाद' अब्दुल जी का आत्म कथात्मक उपन्यास है। इस उपव्यास में ऐसे चरित्रों का निरुपण हुआ है जो गरीबी की रेखा के बहुत नीचे पाये जाते हैं। इनको राष्ट्रीय आय की वृद्धि का विश्वास नहीं होता।"[2] इस उपन्यास में कथा वाचक 'मैं' ही मुख्य पात्र है। 'मैं' और उनके माँ - बाप की ज़िन्दगी की त्रासदी ही उपन्यास का मुख्यविषय है। अब्बा और अम्मा इस अभावमय जीवन से मुक्त होने को सोचते भी हैं किन्तु के समझ नहीं पा रहे थे कि उन कठिनाईयों से मुक्त होने का कौन सा उपाय वे करें। जहरबाद उपन्यास के जरिए अब्दुल बिस्मिल्लाह जी यही आग्रह करते हैं कि सर्वहारा वर्ग शोषण के प्रति सजग रहे, शोषण के विरुद्ध संघर्ष करें, अपने अधिकार और अस्तित्व को प्राप्त करें और समानता - स्वतन्त्रता व बन्धुत्व भरे समाज का नव निर्माण करें। यही उनकी प्रगतिवादी या मानवतावादी दृष्टिकोण है, जो समकालीन सन्दर्भ में सराहनीय है।

मूलशब्द: राष्ट्रीय आय, त्रासदी, उपाय, जहरबाद, अस्तित्व, बन्धुत्व, मानवतावादी

प्रस्तावना

श्री अब्दुल बिस्मिल्लाह जी समकालीन हिन्दी उपन्यासकारों में विशेष रूप से प्रसिद्ध है। उन्होंने अपने साहित्य सृजन को अनुभूत सत्य का दस्तावेज बनाया है। उनका जीवन संघर्षमय होने के कारण उनके साहित्य में संघर्षशील मानव के विचार ने अभिव्यक्ति पायी है। गद्य और पद्य में आपका समान अधिकार है। आपने कविता, कहानी, उपन्यास, एकांकि, बालोपयोगी कहानियाँ, अनुवाद आदि विविध विधाओं पर अपनी सशक्त व सफल लेखनी चलाई है। उनके समस्त साहित्य में विशेषकर उपन्यासों में आज की व्यवस्था पर चुभता व्यंग्य भर दिया गया है। उन्होंने पत्रकारिता और अध्यापन के क्षेत्र में कई बार नौकरी की है किन्तु कहीं भी वे स्थिर नहीं रह सके। अन्त में 1984 को उनकी नियुक्ति केन्द्रीय विश्व विद्यालय 'जामिया मिलिया इस्लामिया' के हिन्दी विभाग में प्राध्यापक के रूप में हुई। वहाँ से वे सन् जूलाई 2014 में सेवा निवृत्त हुए। धर्म के कट्टर और रूढिवादी विचारों के विरोधक हैं।

अब्दुल बिस्मिल्लाह जी के उपन्यास है - समरशेष (1984), झीनी - झीनी बीनी चदरिया (1986), मुखडा क्या देखे (1986), जहरबाद (1987), दंत कथा (1990), अपवित्र आख्यान (2008), और रावी लिखता है (2010)। संघर्ष की ज़िन्दगी के

अनुभवी बिस्मिलाह जी के उपन्यासों में व्यवस्था विरोधी स्वर सर्वत्र गूँज उठता है। उन्हें बचपन में अनेक त्रासद स्थितियों से गुज़रना पडा। माँ - बाँप के चले जाने के बाद अनाथ बालक बन गया। इसी वजह से रिश्तेदारों से, समाज से, परिवेश से उसे संघर्ष करना पडा। उनका जीवन एक पहेली ही है। उल्लेखनीय बात यह है कि इतने संघर्षों से गुज़र जाने के बाद भी उनके तेज, ओज और उत्साह हमेशा ताज़ा और सक्रिया बने रहे। इसी संघर्षभरे अनुभवों के कारण उनका झुकाव मार्क्सवाद की ओर रहा। ब्रह्मदेव मिश्र के अनुसार-"अब्दुल बिस्मिल्लाह मार्क्सवादी प्रगतिशील रचनाकार हैं, प्रयोगवादी, प्रयोगशील नहीं"[1] अब्दुल बिस्मिल्लाह जी के साहित्य में प्रस्फुटित संघर्ष चेतना और व्यवस्था विरोधी स्वर इसका प्रमाण है।

'जहरवाद' अब्दुल जी का आत्म कथात्मक उपन्यास है। उपन्यास की कथाभूमि मध्य प्रदेश के मंडला जिले की है। "इस उपन्यास की यह विशेषता है कि मध्यप्रदेश के किसी लेखक ने अब तक इस अंचल को नहीं छुआ है। हिन्दी जगत में भी यह दुर्लभ है। इस उपव्यास में ऐसे चरित्रों का निरुपण हुआ है जो गरीबी की रेखा के बहुत नीचे पाये जाते हैं। इनको राष्ट्रीय आय की वृद्धि का विश्वास नहीं होता।"[2] इस उपन्यास में कथा वाचक 'मैं' ही मुख्य पात्र है। 'मैं' और उनके माँ - बाप की ज़िन्दगी की त्रासदी ही उपन्यास का मुख्यविषय है। मैं का अब्बा आलसी और माँ कर्मनिरत नारी है। परिवार गरीबी की तह में दब रहा है। यह भी नहीं आर्थिक अभाव और गरीबी के कारण अब्बा और अम्मा के बीच हमेशा झगडा होता रहता है। अम्मा टोपरा उठाकर गाँव - गाँव भटकती है और अब्बा कोई काम - धाम नहीं करते। इसपर व्यंग्य करते हुए अम्मा कहती है - "काम न, धन्धा बस दिन - रात बँसी के पीछे खाली मछरी खाके पेट भरेगा, न लाज नहीं आती कि महरिया कमाये और मरद बैठकर खाए।"[3] यह पारिवारिक जीवन की कैसी विडम्बना है।

दर्दनाक बात है कि कथानायक के भी छोटी उम्र में बालश्रमिक बनना पडा क्योंकि अब्बा काम नहीं करते, अम्मा को थोडा - थोडा काम मिलता भी है किन्तु उससे तीन लोगों की भूख मिटाना ही कठिन है। कथावाचक का कहना है - "अब्बा शाम को लौट और मुझसे उन्होंने कहा कि एक काम उन्हें मिल गया है। कल से तुम भी चला, तुम्हें भी रखवा दूँगा।"[4] यहाँ मैं की बालश्रमिक बनने की सूचना स्पष्ट है।

उपन्यास का अन्त बहुत ही हृदय भेदी है। कथानायक अब्बा से उपेक्षित अम्मा को एक घोटी में पकरी के पेड के नीचे बैठी देखता है। वह माँ की दयनीय अवस्था से दुःखी होकर जोर - जोर से रोता है और अपने आपसे कहता है - "मेरे गालों पर जो बह रहा है, वह आँसू नहीं है, जहर है, अभिशप्त और उपेक्षित ज़िन्दगी का।"[5] यहाँ व्यवस्था और पितृसत्ता की तह में जर्जरित मानव जीवन का चित्र हाय। हाय। कहनेवाला ही है।

भारतीय संस्कृति में पति - पत्नी सम्बन्ध को पवित्र माना जाता है। पर कभी - कभी व्यवस्था व पुरुष वर्चास्विता के कारण नारी का शोषण होता रहता है तो परिवार का ताल - मेल बिगड होकर पारिवारिक सम्बन्ध टूट जाता है, परिवार के सदस्य त्रासदी के भोक्ता बन जाता है। समाज की मान्यता यह है कि नारी जो भी हो, चाहे पारिवारिक जीवन के शिकंज में पिस रही हो, पति को परमेश्वर मानकर सतत उनकी पूजा करनी चाहिए। "पुरुष पिटु समाज में नारी के स्वाभिमान का कोई मूल्य नहीं समझा जाता अतः स्त्री का जीवन बडा दयनीय हो जाता है। उनके दाम्पत्य जीवन की कल्पना चूर - चूर हो जाती है। पुरुष पिट्ठु समाज का आधार आर्थिक है। स्त्री की वह ऐसी शक्तियाँ नष्ट कर देती है, जिसके वह आर्थिक स्वतन्त्रता प्राप्त करने में समर्थ न हो

सके। नितान्त उसे पुरुष की चाकरी करनी पडती है। पतिव्रत्य के उच्च आदर्शों के नाम पर इस प्रकार दाम्पत्य जीवन की सारी सरसता कटुता में बदल जाती है। जहरबाद की अम्मा ऐसी शोषित नारी है।

पहले ही यह सूचित किया है कि जहरबाद अब्दुल जी का आत्म कथात्मक उपन्यास है। कथानायक बचपन से ही माता - पिता के संघर्ष व लडाई को देखता आ रहा है। उपन्यास में अब्बा - अम्मा का झगडा रोज़ का है। क्रूद्ध होकर हाथ में आनेवाली चीज़ को बाहर फेकना, अम्मा को पीटना जैसी घटनाएँ नित्य चलती रहीं। पति - पत्नी के आपसी तनाव, संघर्ष, मारपीट और गाली - गलौज चिन्तनीय है। क्योंकि दोनों के बीच के संघर्ष का स्थल अवश्य ही युद्ध भूमि लग रही है। पति के पत्नी पर किए गए अत्याचार के दृश्य देकर वास्तव में उपन्यासकार हमें सचेत रहने व सोचने का अवसर ही देता है। ईद सारे मुहल्ले में धूम - धाम से मचा रहा है तो यहाँ अम्मा और अब्बा के बीच जाने - अनजाने झगड चलता रहता है। कथानायक का कहना है - ईद आयी तो अपने साथ कटुता लेकर आयी। पता नहीं किस बात को लेकर ऐने ईदवाले जिन अब्बा और अम्मा में लडाई हो गई। अपने ऊपर लादे गए अत्याचारों के प्रति नारी का सजग होना ज़रूरी बात है। उपन्यासकार ने कहीं - कहीं अम्मा को उस श्रेणी में लाने का प्रयास किया है। अम्मा के संघर्ष शील व्यवहार का परिचय पुत्र ही देता है - उस दिन अम्मा एकदम शेरनी की तरह खडी हो गयी और बाहर निकलकर उन्होंने भी एक पत्थर उठा लिया। तुम आगे बढ नहीं कि मैं ने मारा नहीं। बुढऊ तुम्हारा कपाट न फोड दूँ तो कहना कोई पठान की बच्ची रही। उसके रग- रग में संघर्ष की आग भडक उठती है।

अब्बा और अम्मा इस अभावमय जीवन से मुक्त होने को सोचते भी हैं किन्तु के समझ नहीं पा रहे थे कि उन कठिनाईयों से मुक्त होने का कौन सा उपाय वे करें। मैं का कहना है - फिर भी मुझे लगता था कि जो दीवार ऊपर से चिकनी और समतल दिखाई पड रही है, वह भीतर ही भीतर दरारों से भरी हुई है। विपन्नता के कीटाणुओं ने उन्हें चारों ओस से चाल दिया है और शान्ति का जो यह खाका दिखाई पड रहा है, मात्र दिखावा है, क्षणिक और कृत्रिम है। इन बेचारों की अभावग्रस्त ज़िन्दगी का कारण हमारी अर्थव्यवस्था ही है। अमीर हमेश अमीर रहता है, गरीब तो गरीब। बलापुर में चारों ओर अकाल पड गया तो भयानक भूखमरी के हृदय दिखाई पडे। किसानों ने अनाज दबा लिए, बाज़ारों में महँगाई बढ गयी। अम्मा का टोपरा सूना हो गया। सारी चीज़ें उधारी में चली गयी थी। घर में खाने केलिए भूँजी भाँग भी नहीं थी। आर्थिक अभाव के कारण अब्बा की चमडेकी दूकान भी बन्द हो गयी। इनके सामने भूखों मरने की नौबत आ गयी। अम्मा कहीं से भुट्टे माँगकर उबालकर खिलाती रही। यह कितने दिनों तक चलेगा। अपनी नियति पर विवश हो रहे परिवार के अनुभव को अपनाही अनुभव स्वीकार करके लेखक निष्कर्ष डालते हैं कि तब मुझे लगा था कि जिसे मैं ने एक छोटा सा फोडा समझ रखा था वह भीतर ही भीतर काफी दूर तक फैल गया है। ऊपर से भले ही वह शुष्क दिखाई दे रहा हो पर उसकी तह में मर्मानत्क टीसें भरी हुई हैं, उसकी पतों में जहरीले कीडे बिलबिला रहे हैं। वह फोडा, वह जहर ही हमारा जीवन है। जिसे हम किसी मज़बूरी की भाँति जी रहे हैं।

यह ठीक ही है कि पिता या पति घर का स्वामी है। परिवार में पिरात की हैसियत मुखिया तथा व्यवस्थापक के रूप में होती है। जिसपर बच्चों का पालन - पोषण, शिक्षा, सुरक्षा तथा सुखों के साधन जुटाना निर्भर रहता है। लेकिन यहाँ अब्बा अपने कर्तव्य को भूलकर निकम्म बनकर ज़िन्दगी घसीट लेता है। घर का सारा बोझ पत्नी पर है जो

दिनभर गाँव जाकर सामान बेचती है शाम होते ही थकी हारी घर लौटती है। घर के झगडे का मुख्य कारण पिता का यही निठलेपने ही है। इतनी बेचारी नारी पर अत्याचार करना पुरुष वर्चस्विता ही है। यहाँ बेटे की मानसिक प्रतिक्रिया है - बार - बार मुझे यही लग रहा था कि मैं पढाई में इसलिए कमज़ोर हूँ कि मेरे घर में हमेशा कलह मचा रहता है और कलह सिर्फ अब्बा के कारण होता है। अतः मन में अब्बा को गालियाँ दे रहा था और मना रहा था कि वे शीघ्र मर जाएँ। मैं सोच रहा था कि यदि वे आज ही मर जाएँ तो कल मैं अम्मा को बुलाऊँगा और हम मज़े से रहेंगे। जल्दी ही मैं ब्याह कर लूँग और थोडा - सा खेत खरीद लूँगा। अन्त में माँ - बाप तलाक लेते हैं।

मुस्लिम समाज में तलाक साधारण सी घटना ही है। तलाक एक ऐसी उग्र औषधी है जो व्यक्ति के अपने जीवन को तो जड से हिला ही देती है साथ ही दूसरों के जीवन पर भी प्रभाव डालती है। जहरबाद का नायक मैं अपनी अम्मा के तलाक शुदा रुप को देखकर कहता है - न वे अब्बा की बीब थी, न नानी की बेटी थी और मेरी माँ। तब मैं सोचता कि अंतर में वेदना का अनन्त स्त्रोत भरकर भी पत्थर बन जानेवाला प्राणी कैसा अनुभव करता होगा, और मेरा मन घुमड - घुमड जाता । तलाक लेते माँ - बाप की सन्तानों का दुःख कौन पहचान सकता।

जहरबाद की अम्मा तलाक शुदा होने के बाद उद्देश्य हीन जीवन बिताती है। उसे ने उमंग है, उन्साह है, व जीने की लालसा है। अम्मा के तलाक हो जाने के बाद वह अलग रहने लगी थी किन्तु बेटे को देखे बिना न रह सकती थी। अतः अत्यन्त दीनता पूर्वक उसने अब्बा से उन्हीं की मैडया में अपनेलिए शरण माँगी थी। अब्बा उसकेलिए थोडी सी जगह देता है, जिसमें अम्मा अपनी नयी गृहस्थी चलाती है। उस गृहस्थी की शोचनीयता बेटा स्पष्ट करता है जो मर्मभेदी है - गृहस्थी कोई खास नहीं थी, पता नहीं कहाँ से थोडे बर्तन वे माँग लायी थी जिनसे पकाने - खाने का काम चलाती थी। ओढने बिछाने केलिए उनके पास एक कथरी और फटी सी चादर भर थी। उन्हीं वस्त्रों में गुडी - मुडी लिपटकर वे रात काट लिया करती थी और प्रातः होती ही न जाने कहाँ निकल जाती थी। भ्रष्ट व्यवस्था और पुरुष सत्ता के शिकँजे में पिसनेवाली इस नारी का बचाव कौन करेगा। व्यवस्था या पुरुष। इसका जवाब दूँढ पाना अभी कष्ट साध्य है।

यहाँ यह भी स्पष्ट हो उठता है कि माँ - बाप तलाक के शिकार बन जाते हैं तो उनकी सन्तान के बँटवारे का प्रश्न सामने आता है, जो बच्चों को कभी न पाटनेवाली समस्या है। जंहरबाद में अब्बा - अम्मा की निरन्तर गाढी होती हुई, गरीबी की जलालत के साथ जीते बच्चे के तमाम टुकडे इस उपन्यास में शामिल है। इसलिए मनोज कुमार झा ने इस उपन्यास के बारे में लिखा - दर असल यह उपन्यास ग्रामीण परिवेश में जीवन के अस्तित्व केलिए संघर्षरत अर्ध सर्वहारा लोगों की कहानी है। उनके दुःखों की सुधाग्नि की, दाहकता की हताशा और निराशा की झुंझलाहट, खिजलाहट और अन्तहीन झगडों की तथा अभावों के कारण मनुष्य के जहरीले जीव में परिवर्तित हो जाने की कहानी है। एक छोटे से बच्चे की आँखों का यह संसार, जिसे भोगने - झेलने को वह विवश है और अपने सीमित अनुभवों के सहारे ही परिस्थिति की भयावह विकटता और निरीह क्षुद्रता की वजहों को समझने की कोशिश करता है और यह पाता है कि सारी लडाई का जड है पैसा। यहाँ हमारी आर्थिक व्यवस्था अमीरों केलिए सुधरी हुई है, गरीबों केलिए नहीं। इसी वजह से मैं के परिवार की जीवन नौका मझधार में पडी हुई है। अब्बा की पुरुष मेधावी वृत्ति आग में घी डालने का काम करती है। इसकी ओर हमारा ध्यान सचेत करने

का सफल प्रयास अब्दुल जी ने किया है। समाज के हर क्षेत्र में न्याय मूलक परिवर्तन चाहते हैं। जहरबाद उपन्यास के जरिए अब्दुल बिस्मिल्लाह जी यही आग्रह करते हैं कि सर्वहारा वर्ग शोषण के प्रति सजग रहे, शोषण के विरुद्ध संघर्ष करें, अपने अधिकार और अस्तित्व को प्राप्त करें और समानता - स्वतन्त्रता व बन्धुत्व भरे समाज का नव निर्माण करें। यही उनकी प्रगतिवादी या मानवतावादी दृष्टिकोण है, जो समकालीन सन्दर्भ में सराहनीय है।

संदर्भ

1. ब्रह्म देव मिश्र-अब्दुल बिस्मिल्लाह के उपन्यासों का विषयगत विवेचन, लोकभारती प्रकाशन, नई दिल्ली, सं.2012, पृ.28
2. त्रिलोचन, दस्तावेज, जनवरी 1988, पृ.104
3. अब्दुल बिस्मिल्लाह, जहरबाद, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, सं.1987, पृ.7
4. पूर्ववत, पृ.70
5. पूर्ववत, पृ.100
6. डॉ. महेन्द्र भटनागार-समस्यामूलक उपन्यासकार प्रेमचन्द्र, हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, वराणसी-1, सं.2008, पृ.183
7. अब्दुल बिस्मिल्लाह-जहरबाद, पृ.24
8. पूर्ववत, पृ.69
9. पूर्ववत, पृ.58
10. पूर्ववत, पृ.70
11. पूर्ववत, पृ.103
12. डॉ. सर्वैपल्ली राधाकृष्णन-धर्म और समाज, राजपाल एण्ड सन्ज़, दिल्ली, सं. 1961, पृ.191
13. अब्दुल बिस्मिल्लाह-जहरबाद, पृ.99
14. पूर्ववत, पृ.109
15. चन्द्रदेव यादव-सं-अब्दुल बिस्मिल्लाह का कथा साहित्य-स्वरूप, अनंग प्रकाशन, दिल्ली, सं.2005,, पृ.75-76